ईशोपनिषद् में प्रतिपादित समन्वयवाद

कृष्ण कान्त सरकार
एम्.फिल् (शोधार्थी), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

Received: May 20, 2018 Accepted: July 11, 2018

ABSTRACT *ईशोपनिषद् में आध्यात्मिकता के वर्णन के साथ साथ मानव जीवन के व्यवहारिक पक्ष का भी वर्णन किया गया है तथा त्याग.भोगए कर्म.निष्कामताए विद्या.अविद्या तथा सम्भूति.असम्भूति के मध्य में एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है। उक्त चारों तत्त्वों के माध्यम से ही एक आदर्श मानव जीवन का निर्माण होता है। उक्त चारों तत्त्वों के दो दो पक्ष हैं। उन में से किसी एक पक्ष के लेकर एक आदर्श मानव जीवन का निर्माण नहीं हो सकता। इसी कारण समन्वयात्मक दृष्टिकोण के आधार पर जीवन निर्वाह करने का निर्देश ईशोपनिषद् के ऋषि ने दिया है। यह ही ईशोपनिषद् का समन्वयवाद है।*

Keywords: *त्याग-भोग, कर्म-निष्कामता, विद्या-अविद्या, सम्भूति-असम्भूति।*

प्रस्तावना-

वैदिकसाहित्य को भारतीय संस्कृति का आदिस्रोत माना जाता है। सम्पूर्ण वैदिक संस्कृति वेद से सम्बन्धित है। वैदिक साहित्य को चार भागों में विभाजित किया जाता है- संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। उपनिषद् वैदिक वाङ्मय के अन्तिम भाग होने के कारणतथा वेदों के सारभूतसिद्धान्तों काप्रतिपादक होने के कारण उपनिषद् को वेदान्त नाम से भी जाना जाता है। चारों वेदों के अलग अलग उपनिषद् हैं। 'ईशोपनिषद्' शुक्लयजुर्वेद काण्वशाखीय संहिता का ४०वां आध्याय है।इस उपनिषद् के प्रथम मन्त्र के प्रथम शब्द 'ईशावास्य' होने के कारण इस उपनिषद् को 'ईशावास्योपनिषद्' के नाम से भी जाना जाता है। अठारह पद्यात्मक इस उपनिषद् में ऋषि ने ईश्वर के स्वरूप के वर्णन के साथ साथ त्यागपूर्वक भोग, कर्म की निष्कामता, विद्या-अविद्या तथा सम्भूति-असम्भूति आदि का एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रपत्र के अभिधेयानुसार 'ईशोपनिषद्' वर्णित 'समन्वयवाद' का प्रतिपादन किया जा रहा है-

- भोग तथा त्याग में समन्वय।
- कर्म तथा निष्कामता में समन्वय।
- विद्या तथा अविद्या में समन्वय।
- सम्भूति तथा असम्भूति में समन्वय।

भोग तथा त्यागमें समन्वय-

संसार के मनुष्यों में दो प्रकार की प्रवृत्ति देखी जाती हैं- १-भोगवादी प्रवृत्ति २- त्यागवादी प्रवृत्ति। भोगवादी प्रवृत्ति के अनुसार सम्पूर्ण जगत् केवल मनुष्यों के भोग के लिये ही है अतः इसे भोग करना चाहिये क्योंकि मृत्यु के पश्चात् ही यह जीवन समाप्त है, अतः जितनी इच्छा है उतनी ही भोग कर लेना चाहिये एवं सम्पूर्ण आयु सुख पूर्वक जीना चाहिये।[1] इस प्रकार की विचारधारा वाली प्रवृत्ति को भारतीय दर्शन में चार्वाक विचारधारा के नाम से जाना जाता है। चार्वाक विचारधारा को 'सुखवाद' के नाम से भी जाना जाता है।सफ़ल जीवन उसी के मानते हैजिसमें अधिक सुख हो। सुखवादी होने के कारण पुरुषार्थ चतुष्टय की जगह केवल अर्थ एवं काम पुरुषार्थद्वय को ही मानते है। चार्वाक की इस विचारधारा को गीता में आसुरीप्रवृत्ति कहकर निन्दा की गई है तथा आसुरी प्रवृत्ति का वर्णन भी करते हैं कि "आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य जगत् को आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न मानते है, अतएव केवल काम ही इसका कारण है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।"[2]कठोपनिषद् मेंभी चार्वाकीय इस भोगवादी विचार धारा की निन्दा की गई है। जिसका उल्लेख कठोपनिषद् के ऋषि ने यम-नचिकेता संवाद के

[1]यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥स.स.अ-१

[2]अपरस्परसभूतं किमन्यत्काहैतुकम्॥गी-१६/८

माध्यम से प्रस्तुत किया है। उक्त संवाद के अनुसार- 'नचिकेता जब आचार्य यम से ब्रह्मज्ञान से सम्बन्धित तृतीयवर की प्रार्थना करते हैं तब आचार्य यम ने नचिकेता को विशाल परिमाण एक भोग्य वस्तुओं का भण्डार समर्पित करना चाहता है।[3]किन्तु अधिक भोग से इन्द्रियां जडता को प्राप्त होने के कारण नचिकेता उन भोग्य वस्तुओं को ग्रहण करने में अस्वीकार करता है।'[4]

त्यागवादी विचारधारा के अनुसार इन भोग्य वस्तुओं से केवल दैहिक क्षणिक सुख ही प्राप्त होता है अतः इन्हे त्याग देकर कठोर तपस्या के माध्यम से सांसारिक दुःख चक्र से मुक्त हो जाना चाहिये।

किन्तु 'ईशोपनिषद्' के ऋषि न तो अधिक भोग करने के लिये कहती है और न ही सम्पूर्ण त्याग देने के लिये कहती है। ईशोपनिषद् के अनुसार सम्पूर्ण संसार में ईश्वर की सत्ता का अस्तित्व मानकर त्याग पूर्वक भोग करना चाहिये। इन भोग्य वस्तुएं किसी भी नहीं होता अतः इन वस्तुओं के प्रति लोभ भी नहीं करना चाहिये[5]क्योंकि भोग्य वस्तुओं को भोग करके समाप्त भी नहीं किया जा सकता वरञ्च व्यक्ति भोग करते करते स्वयं जडता को प्राप्त कर जाते है।[6]

भोगवाद का निषेध करने कारण यह भी है कि मानव शरीर का निर्माण इन्द्रियों समूहों से होता है। इन्द्रियों का स्वभाव है कि विषयों की ओर जाना। अतः इन्द्रियां जितना अधिक विषयों को ग्रहण करती हैं उतना ही जडता को प्राप्त करती हैं। अगर सभी इन्द्रियां जडता को प्राप्त हो जायें तो किसी भी व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि भोग का स्वभाव है इन्द्रियों के तेज को हरण करना।[7]

इसीलिये श्रीकृष्ण ने गीता में विषय भोग से जो सुख मिलता है सुखाभास कहा है जो वास्तव में वह दुःख का हेतु ही है। इसी कारण बुद्धिमान पुरुष को विषय भोग का आनन्द नहीं लेना चाहिये।[8]भोग्य वस्तुओं का भोग राग-द्वैष से रहित होकर करना चाहिये इस प्रकार से जो भोग करता है वह आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होता है।[9]ईशोपनिषद् में जो त्याग एवं भोग में समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है वह एक स्वस्थ मानव जीवनयापन करने का एक उत्तम सिद्धान्त है। ये भोग्य वस्तुएं केवल उस परम तत्त्व प्राप्त करने का माध्यम होना चाहिये।इसीलिये केवल आवश्यकता के अनुसार ही भोग्य पदार्थोंको ग्रहण करना चाहिये इसी में मानव आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

कर्म तथा निष्कामतामें समन्वय-

संसार के सभी मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होते हैं, धनों को सञ्चय करने में ही सम्पूर्ण आयु को समाप्त कर देते हैं एवं कर्म को ही परम पुरुषार्थ मानते हैं पर ईशोपनिषद् के ऋषि कहता है लिप्तता रहित कर्म करते हुये सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिये।[10]गीता में भी कर्म को अनासक्त भाव से करने की बात की गई है।[11]गीता में कृष्ण कहता है कि "मानव को कर्म उस प्रकार करना चाहिये जिस

---

[3]शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्वबहुन् पशुन् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥
एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि॥कठ्-१/१/२३,१/१/२४

[4]श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव गीते॥कठ्-१/१/२६

[5]ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ई.म-१

[6]भोगा न भूक्ता वयमेव भोक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा॥वै.श-१२

[7]कठ्-१/२६

[8]ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
अद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥गी-५/२२

[9]रागद्वैषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥गी-२/६४

[10]कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजेविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ ई.म-१

[11]कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फ़लेषु कदाचन।
मा कर्मफ़लहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥गी-२/४७

प्रकार जल में रहते हुये भी कमल के पत्र जल में प्रविष्ट नहींहोता है।अर्थात् कर्म के प्रति किसी भी प्रकार आसक्ति नहीं रखनी चाहिये।"[12]जो व्यक्ति कर्म करता है पर कर्म फ़ल के प्रति अनिच्छाभाव रखता हैवह जन्म-मृत्यु रूप संसार चक्र से मुक्त हो जाता है।[13]कर्म करना और कर्म फ़ल के प्रति अनिच्छा भाव रखना ही 'योग' कहलाता है।[14]यह समत्वरूप योग से ही कर्म वन्धन से मुक्त होने का उपाय है और यह ही कर्म की कुशलता।[15]जो व्यक्ति कर्मबन्धन से मुक्त नहीं हो सकता है वह अन्धाकार से आवृत असुरों के लोक को प्राप्त करता है।[16]गीता में भी श्रीकृष्ण कहता है जो लोग बहुत अधिक धनसम्पदाओं को संग्रह करता हैं वे लोग मोहरूप जाल से समावृत होकर अपवित्र नरक लोक को प्राप्त करते हैं।[17]इसी कारण इशोपनिषद् मे कर्म करना तथा कर्म में लिप्त न होना दोनों में समन्वय रखने का निर्देश दिया है।

विद्या तथा अविद्यामें समन्वय-

'विद्या' शब्द विद् धातु क्यप् तथा टाप् प्रत्यय करके बनता है। जिसका शाब्दिक अर्थ है सत्य ज्ञान या आत्मिक ज्ञान।उवट 'विद्या' का अर्थ 'आत्मज्ञान' माना है और महीधर ने 'विद्या' का अर्थ 'देवताज्ञान' माना है।[18]मुण्डकोपनिषद् में विद्या का विभाजन दो भागों में किया है १-पराविद्या २-अपराविद्या।[19]अपरा विद्या अङ्ग सहित चारों वेद हैं। जिसमेंविभिन्न ज्ञान-विज्ञान, विभिन्न पदार्थ, विभिन्न यज्ञ,भोगों के साधनों का प्राप्ति का उपाय, भोगों की स्थिति तथा भोगों के प्रकार आदिओं का वर्णन हैंऔर परा विद्या वह है जिससे अक्षरब्रह्म का ज्ञान हो।[20]

'अविद्या' शब्द विद् धातु क्यप् तथा टाप् (नञ्) करके बनता है। जिसका शाब्दिक अर्थ आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव। पतञ्जलि ने अविद्या को परिभाषित करते हुये कहा है किजिससे तत्त्वों का अयथावत् ज्ञान हो वही अविद्या है।[21]शङ्कराचार्य ने अविद्या को ब्रह्म की मायामयीशक्ति कहा है।[22]सदानन्द ने भी वेदान्तसार मेंअविद्या को सदसदनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक तथा ज्ञान विरोधी कहा है।[23]

ईशोपनिशद् में विद्या एवं अविद्या दोनों को मानव जीवन के लिये आवश्यक बताया है। दोनों में समन्वय स्थापित करते हुये विद्या-अविद्या का फ़ल का भी वर्णन किया है। अविद्या के माध्यम से धनादि सम्पदाओं को संग्रह करने के साथ साथ मृत्यु को तो पार कर जाते हैं पर अमृत को नहीं प्राप्त कर सकते। जो अविद्या के साथ साथ विद्या को भी जानते हैं वे मृत्यु को पार करके अमृत को भी प्राप्त कर लेते हैं।[24]जो मनुष्य केवल अविद्या की उपासना करते हैं वे अन्धकार में प्रवेश करते है और जो लोग विद्या को तो नहीं जानते पर

---

[12] ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यति न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ गी-५/१०

[13]कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फ़लं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनायम्॥ गी-२/५१

[14]समत्वं योगः उच्यते॥गी-२/४८

[15]योगः कर्मसु कौशलम्॥गी-२/५०

[16]असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता॥ई.म-३

[17]अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥गी-१६/१६

[18]शुक्लयजुर्वेदसंहिता उव्वट-महीधर भाष्य पृ-८१४

[19]द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। मु-१/४

[20]तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तक्षरमधिगम्यते॥मु-१/५

[21]अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥ यो.सू-५६

[22]अविद्यात्मिका बीजशक्तिरव्यक्तः शब्दनिर्देश्यापरमेश्वराश्रयमायामयी॥ब्र.शा-१/४/३

[23]अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि।वे-६पृ

[24]विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥ई.म-११

विद्या का जानने का अभिमान करते हैं वे लोग अति गहन अन्धकार लोक को प्राप्त करते हैं।[25]इसीलिये मानव जीवन का अगर अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करना हो तो दोनों का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

सम्भूति तथा असम्भूतिमें समन्वय-

ईशोपनिषद् में सम्भूति-असम्भूति में भी समन्वय स्थापनकरके इसका फ़ल का भी वर्णन किया है। सम्भूति का अर्थ अविनाशी,सम+भू+तिप् से बनता है जो सदैव रहता है अर्थात् अक्षरब्रह्म और जो अविनाशी जिसकी सत्ता क्षणिक वह 'असम्भूति' है। अ+सम्+भू+ति से असम्भूति शब्द बनता है।असम्भूति का अर्थ 'कार्यरूपब्रह्म'।[26]महीधर ने भी 'असम्भूति' का अर्थ 'कार्यब्रह्म' माना है।[27]ईशोपनिषद् में असम्भूति अर्थात् केवलमात्र विनाशशील देव-पितर-मनुष्य आदि की उपासना का निषेध किया है। और जो केवलमात्र असम्भूति की उपासना करते हैं वे अन्धकार लोक को प्राप्त करते हैं और जो लोग सम्भूति अर्थात् अविनाशी परमब्रह्म की उपासना करने का भान करते हैं वास्तव में उपासना नहीं करते वे अधिकाधिक अन्धकार लोक को प्राप्त करते हैं।[28]गीता में देव, द्विज, गुरु और प्राज्ञ की सेवा तथा ब्रह्मचर्य-अहिंसादि पालन को 'शारीरतप' बताया है।[29]जो व्यक्ति असम्भूति अर्थात् देव, द्विज, गुरु और प्राज्ञ की सेवा तथा ब्रह्मचर्य-अहिंसादि पालन करता है वह मृत्यु को तो पार कर जाते हैं पर अमृत को प्राप्त नहीं कर सकते और जो असम्भूति की उपासनाके साथ साथ सम्भूति अर्थात् अक्षरब्रह्म की भी उपासना करतें हैं वह अविनाशी आनन्द को प्राप्त कर लेते हैं।[30]पूर्व में ही कहा जा चुका है कि ईशोपनिषद् के ऋषि मानव जीवन काल के दुःखादिओं को अस्वीकार नहीं करता इसीलिये प्रत्येक मानव का कर्तव्य होता है कि वह अपने जीवन काल के दुःखादिओं का निवारण करते हुये तथा समाज के सभी मनुष्यों के साथ 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना रखते हुये सम्भूति तथा असम्भूति की उपासना करनी चाहिये। ये ही सम्भूति तथा असम्भूति का समन्वय स्थापन करने का तात्पर्य है।

निष्कर्ष-

ईशोपनिषद् का सामग्रिक अवलोकन से यह पता चलता है कि- अविद्या, कर्म में लिप्त होना और असम्भूति ये तीनों भोगवाद की ओर प्रवृत्त करवाते हैं और केवलमात्र विद्या, केवलमात्र निष्काम भाव से किया गया कर्म और सम्भूति ये तीनों त्यागवाद की ओर प्रवृत्त करवाते हैं। संसार में दुःख है ईशोपनिषद् इसे अस्वीकार नहीं करती पर दुःखों से भयभीत होकर घर-संसार त्याग देकर कठोर तपस्या करके मुक्ति प्राप्त करने के लिये भी नहीं कहती है। दुःख-द्वन्दों की भांती सुख, शान्ति और आनन्द भी इसी में है अन्यत्र कहीं नहीं। ईशोपनिषद् न संसार को त्यागने के लिये कहती है और न ही संसारस्थ भोग्य वस्तुओं लिप्त होने के लिये कहती है। ईशोपनिषद् कर्मफ़ल की अकांक्षा का त्याग कर भगवदर्पणबुद्धि से यावज्जीवन शुभकर्मों का अनुष्ठान करते हुये अपनी सौ वर्षों का जीवन यात्रा को दृढतापूर्वक पूर्ण करने का प्रयत्न करने की बात की है। विघ्न बाधाओं के सामने अपने को अजेय बनाने का सदैव प्रयत्न करना चाहिये। ये ही ईशोपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय है, जिसमें विश्व के सौन्दर्य को सुन्दरतम रूप से अंकित करने का प्रयास किया है। जिसमें उषा का हास्य, संन्ध्या का राग, माता का प्यार, पत्नी का निरपेक्ष समर्पण, इस प्रकार कारुण्य, वदान्यता, त्याग और सेवा की सुन्दरतम सुकोमल भावानाओं की ऐसी अभिव्यक्ति अन्यत्र कहीं है इसमें कोई सन्देह नहीं। ये ही ईशोपनिषद् का व्यवहारिक पक्ष तथा 'समन्वयवाद' है, ये ही ईशोपनिषद् का सार है।

---

[25]अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायांरताः॥ई.म-९

[26]ई.शा-पृ३

[27] शुक्लयजर्वेद संहिता उवट-महीधर भाष्य पृ-८१२

[28] अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यांरताः॥ई.म-१२

[29] देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥गी-१७/१४

[30] सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयंसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥ई.म-१४

संकेताक्षरसूची-

वे-वेदान्तसार, ई.म-ईशोपनिषद्. मन्त्र, ई.शा- ईशोपनिषद् .शाङ्करभाष्य, गी-गीता, कठ्-कठोपनिषद्, यो.सू-योगसूत्र, मु-मुण्डकोपनिषद्, सा-सांख्य सूत्र,स.स-सर्वदर्शन संग्रह।

सन्दर्भग्रन्थ सूची-

1. आचार्य, सत्यप्रिय. कपिल प्रणीत सांख्यसूत्र, वैदिक आश्रम तिजारा अलवर, 2010
2. आचार्य, कपिलदेव द्विवेदी. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वभारती वाराणसी, 2010
3. ईशादि नौ उपनिषद् शाङ्कर भाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2070 वि.स
4. कुमार, शशिप्रभा, शुक्ल, कुमार सन्तोस, झा,रामनाथ. दार्शनिक सम्प्रदाय कोश, 2014
5. जोशी, रेखा. ईशावास्योपनिषद् की टीकाओं में अद्वैत तत्त्वमीमांसा, उत्तरायण, 2011
6. त्रिपाठी, सुरेश. वेदान्तसार- विवृति सहित, साहित्य भण्डार मेरठ, 2012
7. पाण्डेय, शशिकान्त. अद्वैत वेदान्त में मायावाद, विद्यानिधि,2006
8. मिश्र, जगदीश चन्द्र. भारतीय दर्शन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,2015
9. सिंह, हरि.चार्वाक दर्शन इन्दियानुभववाद, निर्मल पब्लिकेशन्स,1992
10. सरस्वती, प्रणवान्द. यजुर्वेदसंहिता, , गौतमनगर नई दिल्ली, वि.सं 2064
11. शास्त्री, शिवनारायण.ईशोपनिषद्- भाष्य-कुसुमाञ्जली, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली,1986
12. श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र. पातञ्जलयोग दर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी, 2018
13. शर्मा, उमाशङ्कर.संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी 2010
14. श्रीमद्भागवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2071(वि.सं)
15. शास्त्री,रामकृष्ण. शुक्लयजुर्वेदसंहिता उव्वट-महीधर भाष्य सहित चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। संस्करण-1992